भ्रमोच्छेदन

जो

राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द के निवेदन के उत्तर में।

श्रीमत्स्वामिदयानन्द सरस्वतीजी नें

सज्जन आर्य्यों के हितार्थ

निर्माण किया है ॥

अजमेरस्थ

वैदिकयन्त्रालय में मुद्रित हुआ

संवत् १९५४

तृतीयवार २०००

मूल्य)॥॥

इस पुस्तक के छापने का अन्य किसी को अधिकार नहीं है ॥

SGDF
Sri Gargeshwari Digital Foundation

ओ३म्

भ्रमोच्छेदन*

—०*०—

अविद्वानों का

मैंने राजा शिव प्रसाद सितारह हिन्द की बुद्धि और चतुराई की प्रशंसा सुन के चित्त में चाहा कि कभी उन से समागम हो कर आनन्द होवे जैसे पूर्व समय में बहुत ऋषि मुनि विद्वानों के बीच प्रज्ञा सागर बृहस्पति महर्षि हुए थे क्या पुनरपि वही महा अविद्यान्धकार के प्रचार से नाना प्रकार के अन्योन्य विरुद्ध मत मतान्तर के इस वर्त्तमान समय में शरीर धारण करके प्रकट तो नहीं हुए हैं ? ।

देखना चाहिये कि जैसा उन को मैं सुनता हूं वैसे ही वे हैं वा नहीं ऐसी इच्छा थी । यद्यपि मैंने संवत् १९१६ से ले के पांच बार काशी में जाकर निवास भी किया परन्तु कभी उन से ऐसा समागम न हुआ † कि कुछ बार्तालाप होता, मैंने प्रस्तुत संवत् १९३६ कार्तिक सुदी १४ गुरुवार को काशी में आकर महाराजे बिजय नगराधिपति के आनन्द बाग में निवास किया इतने में मार्ग शीर्ष सुदी में अकस्मात् राजा शिवप्रसाद जी प्रसिद्ध एस् एच् करनेल ओलकाट् साहब और एच् पी मेडम बलेवस्तकी को मिलने के लिये आनन्द बाग में आ उनने मुझ से मिलकर कहा कि मैं उक्त साहब और मेडम से मिला चाहता हूं । सुन कर मैंने एक मनुष्य को भेज राजा साहब की सूचना कराई और जब तक उक्त साहब के साथ राजा जी न उठगये तब तक जितनी मैं अपने पत्र में लिख चुका हूं उन से बातें हुईं परन्तु शोक है कि जैसा मेरा प्रथम निश्चय राजा जी पर था वैसा उन को न पाया ‡ मन में बिचारा कि जितनी दूसरे के मुख से बात सुनी जाती है सो सब सच नहीं होती ॥

---

* जो राजा शिव प्रसाद जी अपने लेख पर स्वामी विशुद्धानन्द जी का हस्ताक्षर न कराते तो मैं इस पर एक अक्षर भी न लिखता क्योंकि उन को तो संस्कृत विद्या में शब्दार्थ संबंधों के समझने का सामर्थ्य ही नहीं है इस लिये जो कुछ इस पर लिखता हूं सो सब स्वामी विशुद्धानन्द जी की ओर ही समझा जावे ॥

† एक बार सय्यद अहमद खां सदरसदूर जी की कोठी पर दूर से देखा था पर बार्त्तालाप नहीं हुआ था ॥

‡ राजा जी की वाचालता बहुत बड़ी और समझ अति छोटी देखी ॥

राजा जी लिखते हैं कि स्वामी जी की बात सुन कर मैं भ्रम में पड़ गया यहां बुद्धिमानों को विचारना चाहिये कि क्या मेरी बात का सुनना ही राजा जी को बड़े संदेह में पड़ने का निमित्त है और उन की कम समझ और आलस्य कारण नहीं है * जब कि उन को सन्देह ही छुड़ाना था तो मेरे पास आके उत्तर सुन के यथा शक्ति सन्देह निवृत्त कर आनन्दित होना योग्य न था ? जैसा कोमल लेख उन के पत्र में है वैसा भीतर का अभिप्राय नहीं † किन्तु इस में प्रत्यक्ष छल ही विदित होता है। देखो मार्ग शीर्ष से ले के वैशाख कृष्ण एकादशी बुधवार पर्यन्त सवाचार मास उन के मिलने के पश्चात् मैं और वे काशी में निवास करते रहे क्यों न मिल के सन्देह निवृत्त किये ? । जब मेरी यात्रा सुनी तभी पत्र भेज के प्रत्युत्तर क्यों चाहे ? मेरे चलने समय प्रश्न करना, मेरे बुलाये पर भी उत्तर सुन ने न आना, सवाचार महीने पर्यन्त चुप होके बैठे रहना, और मेरे काशी से चले आने पर अपनी व्यर्थ बड़ाई के लिये पुस्तक छपवा कर काशी में और जहां तहां भेजना कि काशी में कोई भी विद्वान् स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने में समर्थ न हुआ किन्तु एक राजा शिवप्रसाद जी ने किया। ऐसी प्रसिद्धि होने पर सब लोग मुझ को विद्वान् और बुद्धिमान् मानेंगे ऐसी इच्छा का विदित कराना आदि हेतुओं से क्या उन की अयोग्यता की बात नहीं है ? ‡ भला ऐसे मनुष्यों से किसी विद्वान् को उचित है कि बात और शास्त्रार्थ करने में प्रवृत्त होवे ? ऐसे कपट छल के व्यवहार न करने में मनुजी की भी साक्षी अनुकूल है ॥

अधर्मेण तु यः प्राह यश्चाऽधर्मेण पृच्छति ।
तयोरन्यतरः प्रैति विद्वेषं वाधिगच्छति ॥

अर्थ—(यः) जो (अधर्मेण) अन्याय, पक्षपात, असत्य का ग्रहण सत्य का परित्याग, हठ, दुराग्रह से वा जिस भाषा का आप विद्वान् न हो उसी भाषा के

*कोई कितना ही बड़ा विद्वान् हो परन्तु अविद्वान् मनुष्य को विद्या की बातें विना पढ़ाये कभी नहीं समझा सकता न वह विना पढ़े समझ सकता है।

† हाथी के खाने के दांत भीतर और दिखाने के बाहर होते हैं।

‡ जो राजा जी प्रश्नों के उत्तर चाहते तो ऐसी अयोग्य चेष्टा क्यों करते जब मैंने उन की अन्यथा रीति जानी तभी उन से पत्र व्यवहार आगे को न चलाया क्योंकि उन से संवाद चलाना व्यर्थ देखा ॥

SGDF
Sri Gargeshwari Digital Foundation

विद्वान् के साथ शास्त्रार्थ किया चाहे और उस भाषा के सच झूठ की परीक्षा करने में प्रवृत्त होवे और कोई प्रतिवादी सत्य कहे उस का निरादर कर इत्यादि अधर्म कर्म से युक्त हो कर छल कपट से + (पृच्छति) पूछता है (च) और (यः) जो (अधर्मेण) पूर्वोक्त प्रकार से (प्राह) उत्तर देता है ऐसे व्यवहार में विद्वान् मनुष्य को योग्य है कि न उस से पूछे और न उस को उत्तर देवे । जो ऐसा नहीं करता तो पूछने वा उत्तर देने वाले दोनों में से एक मर जाता है (वा) अथवा (विद्वेषम्) अत्यन्त विरोध को (अधि,गच्छति) प्राप्त हो कर दोनों दुःखित होते हैं ॥

जब इस वचनानुसार राजा जी को अयोग्य जान कर लिख के उत्तर नहीं दिये* तो फिर क्या मैं ऐसे मनुष्यों से शास्त्रार्थ करने को प्रवृत्त हो सकता हूं। हां मैं अपरिचित मनुष्यों के साथ चाहे कोई धर्म से पुछे अथवा अधर्म से उन सबों के समाधान करने को एक बार तो प्रवृत्त हो ही जाता हूं, परन्तु उस समय जिस को अयोग्य समझ लेता हूं जब तक वह अपनी अयोग्यता को छोड़ कर नहीं पूछता और न कहता है तब तक उस से सत्याऽसत्यनिर्णय के लिये कभी प्रवृत्त नहीं होता हूं।हां जो सब विद्वानों को योग्य है वह काम तो करता ही हूं, अर्थात् जब २ अयोग्यपुरुष मुझ से मिलता वा मैं उस से मिलता हूं तब २ प्रथम उस की अयोग्यता के छुडाने में प्रयत्न करता हूं, जब वह धर्मात्मता से योग्य होता है तब मैं उस को प्रेम से उपदेश करता हूं वह भी प्रेम से पूछ के निस्सन्देह हो कर आनन्दित होजाता है † अब जो राजा शिवप्रसाद जी ने स्वामी विशुद्धानन्द जी की सम्मति लिखा ज्येष्ठ महीने में निवेदन पत्र छपवा के प्रसिद्ध किया है उसी के उत्तर में यह पुस्तक है ॥

इस में जहां २ (रा०)चिन्ह आवे वहां २ राजा शिवप्रसाद जी का और जहां २ (स्वा०)आवै वहां २ मेरा लेख जानना चाहिये ।

रा० जितना महाराज जी के मुखारविन्द से सुना था बड़े सन्देह का कारण

+ जिस के आत्मा में और; और जिस के बाहर और होवे वह छली कहाता है

* जो जिस बात के समझने और जिस काम के करने में सामर्थ्य नहीं रखता वह उस का अधिकारी नहीं हो सकता ॥

† कोई भी वैद्य जब तक रोगी के आँखों की पीड़ा सोजा और मलीनता दूर नहीं कर देता तब तक उस को दिखला भी नहीं सकता परन्तु जिस के नेत्र ही फूटगये हैं उस को कुछ भी दिखलाने का उपाय नहीं हैं ।

SGDF
Sri Gargeshwari Digital Foundation

हुआ निवृत्त्यर्थपत्र लिखा महाराज जी ने कृपा करके उत्तर दिया उसे देख मेरा सन्देह और भी बढ़ा महाराज जी के लिखे अनुसार ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका मंगा के पृष्ठ ९ से ८८ तक देखा विचित्र लीला दिखाई दी आधे २वचन जो अपने अनुकूल पाये ग्रहण किये हैं शेषार्द्ध को जो प्रतिकूल पाये परित्याग ‡ उन आधे अनुकूल में भी जो कोई शब्द अपने भाव से विरुद्ध देखे उन के अर्थ पलट दिये मनमाने लगा-लिये*परन्तु आप ने याज्ञवल्क्य जी का यह वाक्य आधा ही अपना उपयोगी समझ क्यों लिखा ? क्या इसीलिये कि शेषार्द्ध वादी का उपयोगी है ।

स्वा० क्या मेरी बात ही संदेह की बढ़ाने हारी है उन की अल्प समझ और आलस्य नहीं है और यह भी सत्र है कि जब २ अविद्वान् होकर विद्वान् के बनाये ग्रंथ को देखने लगता है तब २ काच के मंदिर में प्रविष्ट हुए श्वान के समान भूंस २ सुख के बदले दुःख ही पाया करता है ॥

विदित होकि जहां जितने वाक्य के भाग के लिखने की योग्यता हो उतना ही लिखना उचित होता है न अधिक न न्यून, जिस लिये यह वेदभाष्य की भूमिका है इस लिये उस वाक्य समूह में से जितना वेदों का उपयोगी लिखना उचित था उतना ही लिखा है जो इतिहासादि में से जिस किसी की व्याख्या करनी होती तो वहां उस २ भाग का लिखना भी योग्य था । प्रकरण विरुद्ध लिखना विद्वानों का काम नहीं

‡ देखिये राजा जी की अद्भुत लीला मैं ने जो वेदार्थ के अनुकूल लिखा है उस को मेरे अनुकूल और जो वेदार्थ प्रकरण के प्रतिकूल का त्याग किया है उस को मेरे प्रतिकूल समझते हैं इसीलिये राजाजी विद्यारहस्य को कुछ भी नहीं समझते हैं क्योंकि उन को भी ऐसाही करना पड़ताहै ।

* जैसी राजा जी की समझ है वैसी किसी छोटे विद्यार्थी की भी नहीं हो सकती क्योंकि जो व्याख्येय शब्दार्थ के विरुद्ध का छोड़ना और अनुकूल का ग्रहण करना सब को योग्य होता है उस २ को वे उलटा समझते हैं और फिर कोई उदाहरण भी नहीं लिखते कि इस का अर्थ उलटा वा मनमाना किया क्या ज्वरयुक्त मनुष्य के लिये कुपथ्य का त्याग और सुपथ्य का ग्रहण कराना वैद्य का दोष है । और मैंने तो अपनी समझ के अनुसार जो कुछ लिखा है सो सब शास्त्रानुकूल ही है उस को उलटा वा मनमाना लगा लेना जो समझते हैं यह उन की समझ का दोष है ॥

† सब विद्वान् इस बात को निश्चित जानते हैं कि पदों का पद, वाक्यों का वाक्य, प्रकरणों का प्रकरण और ग्रंथों का ग्रंथों ही के साथ सम्बन्ध होता है। जब ऐसा है तब राजा जी को अपनी बात की पुष्टि के लिये सब पद, सब वाक्य, सब प्रकरण, और सब ग्रंथों का प्रमाणार्थ एकत्र लिखना उचित हुआ, क्योंकि यह उन्हीं की प्रतिज्ञा है ‡ कि आधा छोड़ना और आधा लिखना किसी को योग्य नहीं—और जो राजा जी संपूर्ण का लिखना उचित समझते हैं, सो यह बात अत्यन्त तुच्छ और असम्भव है। ऐसी बात कोई बालबुद्धि मनुष्य भी नहीं कह सकता। देखिये फिर यही उन की अविद्वत्ता उलटा उन को उन्हीं मिथ्यादोषों में पकड़कर गिराती रहती है अर्थात् जो मिथ्या दोष वे मेरे लेख पर देते हैं उन्हीं में आप डूबे हैं ॥

यहां जब कोई मनुष्य राजा जी से पूछेगा कि आप जो स्वामी दयानन्दसरस्वती जी की बनाई भूमिका में दोष देते हैं वही आप के (अन्धेनैव नीयमाना यथाऽन्धाः) इस लेख में भी आते हैं। इस की वाक्यावली * तो ऐसी है (अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः। जङ्घन्यमाना अपि यन्ति मूढा अन्धेनैवनीयमाना यथाऽन्धाः) फिर आप ने इस वाक्यावली में से पूर्व के तीन भाग छोड़, चौथे भाग को क्यों लिखा? तब राजा साहब घबड़ा कर मौन ही साध जांयगे, क्योंकि वे वाक्यावली में से प्रकरणोपयोगी एक ही भाग का लिखना उचित नहीं समझते चाहे प्रकरणोपयोगी हो वा न हो, किन्तु पूरी वाक्यावली लिखना योग्य समझते हैं † जो ऐसा न समझते तो (एवंवा अरेऽस्य महतो भूतस्य निश्श्वसितमेतद्यद्ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इतिहासः पुराणं विद्या उपनिषदः श्लोकाः सूत्राण्यनुव्य-

† चेत करना चाहिये यह उलटी समझ राजा जी की है कि जो अनेक वाक्यों को एक वाक्य समझना।

‡ ऐसा असंभव वचन किसी विद्वान् के मुख से नहीं निकल सकता है और न हाथ से लिखाजा सकता है।

* जैसे कोई प्रमत्त अर्थात् पागल पगड़ी पग पर और जूते शिरपर धरता है वैसा काम विद्वान् कभी नहीं कर सकता।

† मेरी प्रतिज्ञा तो यह है कि जहां जितना लिखना योग्य हो वहां उतना ही लिखना।

SGDF
Sri Gargeshwari Digital Foundation

ख्यानानि व्याख्यानानीष्टगं हुतमाशितं पायितमयं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतान्यस्यैवैतानि सर्वाणि निःश्वसितानि) इस वाक्य समुदाय को स्वामी जी ने नहीं लिखा, यह मिथ्या दोष क्यों लगाते पर विचारे क्या करें उन्हों ने न कभी किसी से वाक्य का लक्षण सुना और न पढ़ कर जाना है, जो सुना वा जाना होता तो (एवंवा०) इस से ले के (निःश्वसितानि) इस अनेक वाक्य के समुदाय को एक वाक्य क्यों समझते † देखिये यह "महाभाष्य में वाक्य का लक्षण लिखा है (एकतिङ्वाक्यम्) जिस के साथ एक तिङन्त के प्रयोग का सम्बन्ध हो वह वाक्य कहाता है जैसे (एवंवा अरेऽस्य महतो भूतस्य विभोः परमेश्वरस्य साक्षाद्वा परम्परा सम्बन्धादेतत्सर्वं वक्ष्यमाणमनेकवाक्यवाच्यं निःश्वसितमस्तीति)। एक और (पूर्वोक्तस्य सकाशादृग्वेदो निःश्वसितोऽस्तीति) दूसरा वाक्य है इसी प्रकार इस कंडिका में २० वाक्य तो पठित हैं और आकांक्षित वाक्य (त्वं विद्धि) इत्यादि ऊपर से और चकार से इन्हीं के अविरुद्ध अपठित उपयोगी अनेक अन्य वाक्य भी अन्वित होते हैं। क्या जिन को वाक्य का बोध न हो उन को पदार्थ और वाक्यार्थ का बोध जिन को पदार्थ और वाक्यार्थ का बोध न हो उन को प्रकरणार्थ और ग्रंथ के पूर्व पदार्थ का बोध होने की आशा कभी हो सकती है ? ‡ इसी लिये जो राजा जी को दूसरे पत्र में मैंने लिखा है सो बहुत ठीक है कि इस से मुझ को निश्चत हुआ कि राजा जी ने वेदों से लेके पूर्वमीमांसा पर्य्यन्त विद्या पुस्तकों में से किसी भी पुस्तक के शब्दार्थ सम्बन्धों को जाना नहीं है * इस लिये उन को मेरी बनाई भूमिका का अर्थ भी ठीक २ विदित न हुआ ॥

† जो राजा जी विद्या में वास कर अविद्या से पृथक् होते तो उन के मुख से ऐसी असंभव बात कभी न निकलती।

‡ राजा जी ने समझा होगा कि मैं बड़ा बुद्धिमान् हूं। हां [अन्धानां मध्ये काणो राजा] यहां इस न्याय के तुल्य तो चाहे कोई समझ लेवे।

* ईश्वरोक्त चार वेद स्वतः प्रमाण और ब्रह्मा से लेके जैमिनिपर्य्यन्त ऋषि मुनि और ऐतरेय ब्राह्मण से लेके पूर्वमीमांसा पर्यन्त ग्रंथों की गणना से कोई भी आर्ष पुस्तक पढ़ना बाकी नहीं रहता कि जिस का परतः प्रमाण ग्रहण न हो सके क्योंकि ग्रंथकारों में जैमिनि सब के पश्चात् हुए हैं और पुस्तकों में पूर्व मीमांसा सब से पीछे बनाया है इस लिये जो राजा जी ने नोट में (स्वामी जी ने पूर्व मीमांसापर्यंत पढ़ा होगा) लिखा है सो भ्रम से ही है ॥

क्या अब जिस को थोड़ी सी भी बुद्धि होगी वह राजासाहब को शास्त्रों के तात्पर्यार्थ ज्ञानशून्य जानने में कुछ भी शङ्का रख सकता है यहां चोर, कोटपाल को दंडे यह कहानी चरितार्थ होती है कि जो (अन्धेनैवनीयमाना यथाऽन्धाः) के समान स्वयं राजा जी और उन के विचारानुकूल चलने वाले हो कर भ्रम से इस के अर्थ को मेरी बनाई भूमिका और मेरे उपदेश को मानने हारे पर झोंक देते हैं । क्या, यह उलट पलट नहीं है? ॥ इस से मैं सब आर्यसज्जनों को विदित करता हूं कि जो अपना कल्याण चाहें वे उन के व्यर्थ वाक्याडम्बर जाल में बद्ध हो अपने मनुष्य जन्म के धर्मार्थ काम मोक्ष फलों से रहित हो कर दुःखदुर्गन्धसागररूप घोर नरक में गिर कर चिरकाल दारुण दुःख भोग न करें और सर्वानन्दप्रद वेद के सत्यार्थप्रकाश में स्थिर हो कर सर्वानन्दों का भोग न छोड़ बैठें–अब जो स्वामी विशुद्धानन्द जी की पक्षपात रहित विद्वत्ता की परीक्षा बाकी है सो करनी चाहिये ॥

रा० श्रीमत्पण्डितवर * बालशास्त्री जी तो बाहर गये हैं परम पूजनीय जगद्गुरु + श्रीस्वामी विशुद्धानंद जी के चरणों में पहुंच जा पत्र और उत्तरों को देख कर बहुत हंसे ‡ और पिछले उत्तर पर जिस में इन दोनों महात्माओं का नाम है कुछ लिखवा भी दिया स्वामी विशुद्धानन्द जी का लिखवाया राजा साहब के प्रश्नों का उत्तर दयानन्द से नहीं बना इति ।

स्वा० जिन का पक्षी पक्षपातान्धकार से विचारशून्य हो उन के साक्षी तत्सदृश क्यों न हों क्या यथा बुद्धि कुछ विद्वान् हो कर स्वामीविशुद्धानन्द जी को योग्य था कि ऐसे अशास्त्रवित् अव्युत्पन्न व्यर्थ वैतण्डिक मनुष्य के अत्यन्त अयुक्त लेख पर विना सोचे समझे सम्मति लिख देवें और इस से सजातीयप्रवाहपतनन्यायकरके यह भी विदित हुआ कि स्वामी विशुद्धानंद जी भी राजा जी के तुल्यत्व की उपमा के योग्य हैं । मैं स्वा-

---

* काशी के पंडितों में तो बालशास्त्री जी किसी प्रकार श्रेष्ठ हो सकते हैं भूगोलस्थ पंडितों में नहीं ।

+ जगत् में जो २ उनके शिष्य वर्ग में हैं उन २ के परम पूजनीय और गुरु होंगे सब के क्यों कर हो सकते हैं ।

‡ जो कुछ भी पत्रों के अभिप्राय को समझते तो हास करके अयोग्यपत्र पर सम्मति क्यों लिख बैठते ॥

मी विशुद्धानन्द जी को चिताता हूं कि आगे कभी ऐसा निर्बुद्धिता का काम न करें * भला मैं ने तो राजा जी को संस्कृत विद्या में अयोग्य जान कर लिख दिया है कि आप ने जिस लिये वेदादि विद्या के पुस्तकों में से एक का भी अभ्यास नहीं किया है जो आप को उत्तर ग्रहण की इच्छा हो तो मेरे पास आके सुन समझ कर अपनी बुद्धि के योग्य ग्रहण करो—आप दूर से वेदादि विषयक प्रश्न करने और उत्तर समझने योग्य नहीं हो सकते। इसी लिये उन को लिख के यथोचित उत्तर न भेजे और न भेजूंगा यह बात भी मेरे दूसरे पत्र से प्रसिद्ध है कि जो वे वेदादिशास्त्रों में कुछ भी विद्वान् होते तो मेरी बनाई भूमिका का कुछ तो अर्थ समझ लेते † न ऐसी किसी की योग्यता है कि अंधे को दिखला सके यह भी मैं ठीक जानता हूं कि स्वामी विशुद्धानंद जी भी वेदादि शास्त्रों में विद्वान् नहीं किन्तु नवीनटीकानुसार दश उपनिषद् शारीरक और पूर्व-मीमांसा सूत्र और प्राचीन आर्षग्रंथों से विरुद्ध कपोलकल्पित तर्कसंग्रहादि ग्रंथों का अ-भ्यास तो किया है परन्तु वे भी नशा से ‡ विस्मृत हो गए होंगे तथापि उन का संस्कार मात्र तो ज्ञान रहा ही होगा इस लिये वे संस्कृत पदवाक्य प्रकरणार्थों को यथा शक्ति जान सक्के हैं परन्तु न जाने उन्हों ने राजा जी के अयोग्य लेख पर क्यों कर साक्षी लिखी अस्तु। जो किया सो किया अब आगे को वे वा बालशास्त्री जी जिस के उत्तर वा प्रश्नों पर हस्ताक्षर करके मेरे पास अपनी ओर से भेज दिया करें और यह भी सम-झ रक्खें कि जो प्रश्नोत्तर उन के हस्ताक्षरयुक्त आवें गे वे उन्हीं की ओर से समझे जावेंगे जैसा कि यह निवेदनपत्र का लेख स्वामी विशुद्धानन्द जी की ओर से समझा गया है। इसी लिये वे तीनों स्वामी सेवक मिल कर प्रश्नों को विचार शुद्ध लिख कर मुंशी बख्तावर सिंह जी के पास भेज दिया करें मुंशी जी आप की ओर से यह लेख है वा नहीं इस निश्चय के लिये पत्र द्वारा आप से संमति पत्र मंगवा के मेरे पास भेज

---

* जो कोई विना विचारे कर बैठता है उस को बुद्धिमान् प्राज्ञ नहीं कहते।

† यह तो सच है कि जो मनुष्य योग्य होकर समझना चाहता है वह समझ भी सकता है।

‡ सुना है कि स्वामी विशुद्धानन्द जी भांग और अफीम का सेवन करते हैं जो ऐसा है तो अवश्य उन को विद्या का स्मरण न रहा होगा जो मादक द्रव्य होते हैं वे सब बुद्धिनाशक होते हैं इस से सब को योग्य है कि उन का सेवन कभी न करें।

दिया करेंगे और मेरा लेख भी मेरे हस्ताक्षर सहित अपने हस्ताक्षर करके पत्र सहित उन के पास भेज दिया करेंगे वे लोग राजा जी आदि को समझाया करें और वे आप से मेरे लेखाभिप्राय को समझ लिया करें जो इस पर भी आप लोग परस्पर विचार करने में प्रवृत्त न होंगे तो क्या सब सज्जन लोग आप लोगों को भी अयोग्य न समझ लेंगे क्योंकि जो स्वपक्ष के स्थापन और पर पक्ष के खण्डन में प्रवृत्त न होकर केवल विरोध ही मानते रहें वे अयोग्य कहाते हैं। इसलिये मैं सब को सूचना करता हूं कि जो मेरे पक्ष से विरुद्ध अपना पक्ष जानते हों तो प्रसिद्ध होकर शास्त्रार्थ क्यों नहीं करते? और टट्टी की आड़ में स्थित होकर ईंट पत्थर फेंकने वाले के तुल्य कर्म करना क्यों नहीं छोड़ते? और जो विरुद्ध पक्ष नहीं जानते हों तो अपने पक्ष को छोड़ मेरे पक्ष में प्रवृत्त होकर प्रीति से इसी पक्ष का प्रचार करने में उद्यत क्यों नहीं होते? * जो ऐसा नहीं करके दूर ही दूर रह कर झूठे गाल बजाने और जैसे मेरे काशी से चले आये पर राजा जी के पत्र पर व्यर्थ हस्ताक्षर करने से उन ने अपनी अयोग्यता प्रसिद्ध कराई वैसे जो वे मुझ से शास्त्रार्थ करेंगे तो प्रशंसित भी हो सकते हैं। ऐसा किये विना क्या वे लोग बुद्धिमान् धार्मिक विद्वानों के सामने अमाननीय और अप्रतिष्ठित न होंगे? ॥ जो इस में एक बात न्यून रही है कि बालशास्त्री जी भी इसपर अपनी सम्मति लिखते तो उन को भी राजा शिवप्रसाद और स्वामी विशुद्धानन्द जी के साथ दक्षिणा मिलजाती। कहिये राजा जी आप अपनी रक्षा के लिये स्वामी विशुद्धानन्द जी के चरणों में पहुंच कर पत्र दिखा सम्मति लिखा पुस्तक छपाकर इधर उधर भेजने से भी न बच सके तो आप के जाट, खाट, और कोल्हू: लौट कर आप ही के शिर पर चढ़े वा नहीं, अब इस बोझ के उतारने के लिये आप को योग्य है कि बालशास्त्री जी के चरणों में भी गिर कर बचने का उपाय कीजिये और आप अपने विजय के लिये स्वामी-विशुद्धानन्द जी और बालशास्त्री जी को (प्राड्विवाक) अर्थात् बारिस्टर करना भी मत छोड़िये, अथवा उत्तम तो यह है कि वे दोनों आप को ढाल बना कर न लड़ें किन्तु सन्मुख हो कर शास्त्रार्थ करें, इसी में उन की शोभा है। अन्यथा नहीं, परंतु मैं आप और उन को निश्चित कहता हूं कि सब मिलकर कितना ही करो जब तक

* उन को अवश्य योग्य है कि सत्य के आचरण और असत्य के छोड़ने में अति दृढोत्साह युक्त हो के निन्दा स्तुति हानि लाभ आदि की प्राप्ति में शोक और हर्ष कभी न करें।

कोई मनुष्य झूठ छोड़, सत्यमत का ग्रहण नहीं करता तबतक, अपना और दूसरे का विजय कभी नहीं कर सकता और न करासकता है क्या दूसरे की वृथा प्रशंसा से हर्षित होकर स्वामीविशुद्धानन्द जी का बहुत हंसना बालकों का खेल नहीं है ? और जो कोई अपनी योग्यता के सदृश वर्त्तमान न करे वह संशय में मग्न होकर विनष्ट क्यों कर न होवे ॥

अब मैं सूचना करता हूं कि बुद्धिमान् आर्य लोग पक्षी राजा जी और साक्षी विशुद्धानन्द जी के हस्यास्पद लेख को देख उस पर विश्वास कर इस(क्वास्ताः क्व निपतिताः)महाभाष्योक्त वचनार्थ के सदृश हो कर धर्मफल आनन्द से छूटकर दुर्गन्ध गढ़े और दुःखसागर में जा न गिरें।

रा० हम केवल वेद की संहिता मात्र मानते हैं एक ईशावास्य उपनिषद् संहिता है और सब उपनिषद् ब्राह्मण हैं। ब्राह्मण हम कोई नहीं मानते सिवाय संहिता के हम और कुछ नहीं मानते हैं ॥

स्वा० जैसा यह राजा जी का लेख है वैसा मैंने नहीं कहा था किन्तु जैसा नीचे लिखा है वैसा कहा गया था। तद्यथा—

रा० आप का मत क्या है

स्वा० वैदिक।

रा० आप वेद किस को मानते हैं।

स्वा० संहिताओं को।

रा० क्या उपनिषदों को वेद नहीं मानते।

स्वा० मैं वेदों में एक ईशावास्य को छोड़ के अन्य उपनिषदों को नहीं मानता किन्तु अन्य सब उपनिषद् ब्राह्मण ग्रन्थों में हैं। वे ईश्वरोक्त नहीं हैं।

रा० क्या आप ब्राह्मण पुस्तकों को वेद नहीं मानते ?।

स्वा० नहीं, क्योंकि जो ईश्वरोक्त है वही वेद होता है जीवोक्त को वेद नहीं कहते, जितने ब्राह्मण ग्रन्थ हैं वे सब ऋषि मुनि प्रणीत, और संहिता ईश्वर प्रणीत हैं जैसा ईश्वर के सर्वज्ञ होने से तदुक्त निर्भ्रान्त सत्य और मत के साथ स्वीकार करने योग्य होता है वैसा जीवोक्त नहीं होसकता क्योंकि वे सर्वज्ञ नहीं परंतु जो २ वेदानुकूल ब्राह्मण ग्रन्थ हैं उन को मैं मानता और विरुद्धार्थों को नहीं मानता हूं। वेद स्वतःप्रमाण और ब्राह्मण परतः प्रमाण हैं इस से जैसे वेद विरुद्ध ब्राह्मण ग्रन्थों का त्याग होता है

वैसे ब्राह्मण ग्रन्थों से विरुद्धार्थ होने पर भी वेदों का परित्याग कभी नहीं हो सकता; क्योंकि वेद सर्वथा सबको माननीय ही हैं यह मेरे पत्र का लेख उन के भ्रमजाल निवारण का हेतु विद्यमान ही था परंतु मेरा लेख क्या कर सकता है जो राजा जी मेरे लेख को समझने की विद्याही नहीं रखते तो क्या इस में राजा जी का दोष नहीं हैं ? ॥

रा० वादी कहता है * जो संहिता ईश्वर प्रणीत है तो ब्राह्मण भी ईश्वर प्रणीत हैं ॥

स्वा० देखिये राजा जी की मिथ्या आडम्बर युक्त लड़कपन की बात को जैसे कोई कहे कि जो पृथिवी और सूर्य ईश्वर के बनाये हैं तो घड़ा और दीप भी ईश्वरने रचे हैं ॥

रा० और जो ब्राह्मण ग्रन्थ सब ऋषि मुनि प्रणीत हैं तो संहिता भी ऋषि मुनि प्रणीत हैं ॥

स्वा० यह भी ऐसी बात है कि जो कोई कहे कि ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका स्वामी दयानन्द सरस्वती प्रणीत है तो ऋग्यजुः साम और अथर्व चारों वेद भी उन्हीं के प्रणीत हैं ॥

रा० वादी को आप अपना प्रतिध्वनि समझिये †

स्वा० देखिये राजा जी की अविद्या के प्रकाश को, क्या प्रतिवादी का प्रतिध्वनि वादी कभी हो सकता है क्योंकि जैसा शब्द और उसमें जैसे पद अक्षर और मात्रा होती हैं वैसाही प्रतिध्वनि सुनने में आता है विपरीत नहीं कोई बालबुद्धि भी नहीं कहसकता कि वादी अपने मुख से प्रतिवादी ही के शब्दों को निकाले विरुद्ध नहीं जबतक प्रतिवादी के पक्ष से विरुद्धपक्ष प्रतिपादन नहीं करता तबतक वह उसका वादी कभी नहीं होसकता जैसे कुआ में से प्रतिध्वनि सुना जाता है क्या वह वक्ता के शब्द से विरुद्ध होता है ? ।

---

* क्या विद्या और सुशिक्षा रहित मनुष्य प्रश्न और उत्तर करना कभी जान सकता है । जब राजा जी वाद के लक्षण युक्तही नहीं हैं तो वादी क्यों कर बन सकते हैं ।

† जो मैं राजा जी के सदृश होता तो वादी को अपना प्रतिध्वनि समझता क्योंकि प्रतिध्वनि, ध्वनि से विरुद्ध कभी नहीं हो सकतीं और वादी प्रतिवादी से अविरुद्ध कभी नहीं हो सकता ।

रा० आप नें लिखा वेदसंहिता स्वतः प्रमाण और ब्राह्मण परतः प्रमाण हैं वादी कहता है कि जो ऐसा है तो ब्राह्मण ही स्वतः प्रमाण हैं आप का संहिता परतः प्रमाण होगा ।

स्वा० क्या यह उपहास की बात नहीं है जैसे कोई कहै कि जो सूर्य्य और दीप स्वतः प्रकाशमान हैं तो घट पटादि भी स्वतः प्रकाशमान हैं ।

रा० आपने लिखा की मेरी बनाई हुई ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के नव ९ पृष्ठसे लेके ८८ अट्ठासी के पृष्ठ तक वेदोत्पत्ति वेदों का नित्यत्व और वेदसंज्ञा विचार विषयों को देख लीजिये निश्चय होगा सो महाराज निश्चय के पलटे मैं तो और भी भ्रांति में पड़गया मुझे तो इतना ही प्रमाण चाहिये कि आपने संहिता को माननीय मानकर ब्राह्मण का क्यों परित्याग किया और वादी तो संहिता जैसा ब्राह्मण को वेद मान जो आप नें वेद के अनुकूल लिखा अपने अनुकूल और जो ब्राह्मण के प्रतिकूल लिखा उसे संहिता के भी प्रतिकूल समझता है ॥

स्वा० यह सच है कि जो अविद्वान् हो कर विद्वत्ता का अभिमान करे वह अपनी अयोग्यता से सुख छोड़ कर दुःख क्यों न पावे ॥ मैं ने वेदों को स्वतःप्रमाण मानने और ब्राह्मणों को परतःप्रमाण मानने में कारण इस भ्रमोच्छेदन के इसी पृष्ठ में आगे लिखे हैं । क्या बांचते समय अकस्मात् बुद्धि और आंखें अन्धकारावृत होगये थे परन्तु जो२ वेदानुकूल ब्राह्मणग्रन्थ हैं उन को मैं मानता और विरुद्धार्थों को नहीं मानता हूं वेद स्वतःप्रमाण और ब्राह्मण परतःप्रमाण हैं इस से जैसे वेदविरुद्ध ब्राह्मणग्रन्थों का त्याग होता है वैसे ब्राह्मणग्रन्थों से विरुद्ध होने पर भी वेदों का परित्याग नहीं हो सकता क्योंकि वेद सर्वथा सब को माननीय हैं ।

रा० तस्माद्यज्ञात् अजायत अर्थात् उस यज्ञ से वेद उत्पन्न हुए पृष्ठ १० पङ्क्ति २१ में आप शतपथ आदि ब्राह्मण का प्रमाण देकर यह सिद्ध करते हैं कि यज्ञ विष्णु और विष्णु परमेश्वर ।

स्वा० जो राजा नी कुछ भी संस्कृत पढ़े होते तो सन्निपाती के सदृश चेष्टा करके भ्रम जाल में न पड़ते क्योंकि तच्छब्द सर्वत्र पूर्वपरामर्शक होता है इसी से मैंने (सहस्रशीर्षा पुरुषः)—यहां से लेके (ग्राम्याश्चये) यहां तक जो छः मन्त्रों से प्रतिपादित निमित्त कारण परमात्मा पूर्वोक्त है उसका आमर्ष अर्थात् अनुकर्षण करके अन्वित किया है देखो इसी के आगे भूमिका के पृष्ठ ९ पंक्ति १७ तस्माद्यज्ञात्स० तस्माद्यज्ञात्सच्चिदानन्दादि

लक्षणात्पूर्णात्पुरुषात् सर्वहुतात् सर्वपूज्यात् सर्वशक्तिमतः परब्रह्मणः (ऋचः) ऋग्वेदः (यजुः) यजुर्वेदः (सामानि) सामवेदः (छन्दांसि) अथर्ववेदश्च (जज्ञिरे) चत्वारो वेदास्तेनैव प्रकाशिता इति वेद्यम् । यह सर्वहुत और यज्ञविशेषण पूर्ण पुरुष के हैं (तस्मात्) अर्थात् जो सर्व का पूज्य सर्वोपास्य सर्वशक्तिमान् पुरुष परमात्मा है उस से चारों वेदप्रकाशित हुए हैं इत्यादि से यहां वेदों ही के प्रमाणसे चार वेदों को स्वतः प्रमाण से सिद्ध किया है यद्यपि यहां यज्ञशब्द भी पूर्ण परमात्मा का विशेषण है तथापि जैसा मैंने अर्थ किया हैं वैसा ब्राह्मण मेंभी है इस साक्षीके लिये (यज्ञो वै विष्णुः) यह वचन लिखाहै और जो ब्राह्मण में मूल से विरुद्ध अर्थ होता तो में उसका वचन साक्षी के अर्थ कभी न लिखता जो इस प्रकार से पद, वाक्य, प्रकरण, और ग्रन्थ की साक्षी आकाङ्क्षा योग्यता आसत्ति और तात्पर्यार्थ को पक्षी राजा जी और स्वामी विशुद्धानन्द जी जानते वा किसी पूर्ण विद्वान् की सेवा करके वाक्य और प्रकरण के शब्दार्थ सम्बन्धों के जानने में तन मन धन लगा के अत्यन्त पुरुषार्थ से पढ़ते तो यथावत् क्यों न जानलेते * ॥

(रा० पृष्ठों को कुछ उलट पलट किया तो विचित्र लीला दिखाई देती है आप पृष्ठ ८१ पङ्क्ति ३ मैं लिखते हैं कात्यायनऋषि नें कहा है कि मन्त्र और ब्राह्मण ग्रन्थों का नाम वेद है पृष्ठ ५२ नें लिखते हैं प्रमाण ८ हैं और फिर पृष्ठ५३मैं लिखते हैं चौथा शब्दप्रमाण आप्तों के उपदेश पांचवां ऐतिह्य सत्यवादी विद्वानों के कहे वा लिखे उपदेश तो आप के निकट कात्यायन ऋषि आप्त और सत्यवादी विद्वान् नहीं थे)† ॥

स्वा० इस का प्रत्युत्तर मेरी बनाई ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के पृष्ठ ८० पङ्क्ति २८ से लेके पृष्ठ ८८ अठासी तक में लिख रहा है जो चाहे सो देख लेवे और जो वहां (एवं तेनानुक्तत्वात्) इस वचन का यही अभिप्राय है कि (मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्) यह वचन कात्यायन ऋषि का नहीं है किन्तु किसी धूर्तराट् ने कात्यायन ऋषि के नाम से बना कर प्रसिद्ध कर दिया हैं जो कात्यायन ऋषि का कहा होता तो

* प्रसिद्ध है कि जो कोदों देके पढ़ते हैं वे पदार्थों को यथावत् कभी नहीं जान सकते ।

† वे तो आप्त विद्वान् थे परन्तु जिस नें उन के नाम से वचन रच कर प्रसिद्ध किया वह तो अनाप्त अविद्वान् ही था ।

SGDF
Sri Guru Dayanand Digital Foundation

सब ऋषियों की प्रतिज्ञा से विरुद्ध न होता ‡ क्या आप जैसा कात्यायन को आप्त मानते हैं वैसा पाणिनि आदि ऋषियों को आप्त नहीं मानते जो कभी आप्त मानते हो तो पाणिनि आदि आप्तों की प्रतिज्ञा से विरुद्ध कात्यायन ऋषि क्यों लिखते और जो कहो कि हम इस वचन को कात्यायन का ही मानेंगे तो ऐसा नहीं हो सकता क्योंकि आप पाणिनि आदि अनेक ऋषियों के लेख का तिरस्कार कर एक को आप्त कैसे मान सकते हो और जो उन को भी आप्त मानते हो तो मन्त्रसंहिता ही वेद है उनके इस वचन को मान कर तद्विरुद्ध ब्राह्मण को वेद संज्ञा के प्रतिपादक वचन को क्यों नहीं छोड़ देते क्योंकि एक विषय में परस्पर विरोधी दो वचन सत्य कभी नहीं हो सकते और जो सैकडों आप्त ऋषियों को छोड़ कर एक ही को आप्त मान कर सन्तुष्ट रहता है वह कभी विद्वान् नहीं कहा जा सकता ॥

रा० आप लिखते हैं कि ब्राह्मण में जमदग्नि कश्यप इत्यादि जो लिखे हैं सो देहधारी हैं अतएव वह वेद नहीं और संहिता में शतपथब्राह्मण के अनुसार जमदग्नि का अर्थ चक्षु और कश्यप का अर्थ प्राण है अतएव वह वेद है ॥

स्वा० ब्राह्मणों में जमदग्नि आदि देहधारियों का नाम यों है कि जहां २ ब्राह्मण ग्रन्थों में उन की कथा लिखी है वहां २ जैसे देहधारी मनुष्यों का परस्पर व्यवहार होता है वैसा उनका भी लिखा है इस लिये वहां देहधारी का ग्रहण करना योग्य है और जहां मनुष्यों के इतिहास लिखने की योग्यता नहीं होसक्ती वहां इतिहास लिखने का भी सम्भव नहीं हो सकता जो वेदों में इतिहास होते तो वेदादि और सब से प्राचीन नहीं हो सकते क्योंकि जिस का इतिहास जिस ग्रन्थ में लिखा होता है वह ग्रन्थ उस मनुष्य के पश्चात् होता है जब कि वेदों में (त्र्यायुषं जमदग्ने०) इत्यादि मन्त्रों की व्याख्या पदार्थविद्यायुक्त होनी ही उचित है इस से उन में इतिहास का होना सर्वथा असम्भव है जिस लिये जैसा मूलार्थ प्रतीत होने के कारण जमदग्नि आदि शब्दों से चक्षु आदि ही अर्थों का ग्रहण करना योग्य है वैसा ही ब्राह्मणग्रन्थों और निरुक्त आदि में लिखा है इस लिये यह मैंने अपने किये अर्थों के सत्य होने के लिये साक्ष्यर्थमात्र लिखा है। राजा जी जो इस बात को जानते और इन ग्रन्थों को पढ़े होते तो भ्रमजाल में फँस कर दुःखित न होते ॥

रा० उस में भी क्या उपनिषद् संज्ञी और इतिहासपुराणादि संज्ञा है ? अथवा ऋग्वेदादि क्रमानुसार उन का संज्ञी वा संज्ञा है ? ॥

‡ हजारह आप्तों का एक अविरुद्धमत होता है मूर्ख दो का भी एकमत होना कठिनहै।

स्वा० इस का उत्तर यह है कि एक ईशावास्य उपनिषद् तो यजुर्वेद का चालीसवां अध्याय होने से वेद है और केन से ले के बृहदारण्यपर्यन्त ९ नव उपनिषद् ब्राह्मणान्तर्गत होने से उन की भी इतिहासादि संज्ञा ब्राह्मणानीतिहासान्० इस पूर्वोक्त वचन से है इस से (एवं वाअरे०) इस वचन में निमित्तकारण कार्यसम्बन्ध होने से संज्ञा संज्ञीसम्बन्ध नहीं घट सकता परन्तु राजासाहब के सदृश अविद्वान् तो (मुखमस्तीति वक्तव्यं दशहस्ता हरीतकी) ऐसा लिखने वा कहने में कुछ भी भययुक्त वा लज्जावान् नहीं होते * ॥

रा० आप लिखते हैं कि ब्राह्मण वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण के योग्य तो हैं यदि आप इतना और मानलें कि सम्पूर्ण ब्राह्मणों का प्रमाण संहिता के प्रमाण के तुल्य है ॥

स्वा० अविद्वमान् को कभी विद्या रहस्य के समझने की योग्यता नहीं हो सकती क्या ऐसा कोई विद्वान् भी सिद्ध कर सकता है कि व्याख्या के अनुकूल होने से मूल का प्रमाण और प्रतिकूल होने से अप्रमाण और व्याख्या के मूल से प्रतिकूल होने से प्रमाण और अनुकूल होने से अप्रमाण होवे इसलिये मन्त्र भाग मूल होने से ब्राह्मण ग्रन्थों से अनुकूल वा प्रतिकूल हो तथापि सर्वथा माननीय होने के कारण स्वतः प्रमाण और ब्राह्मणग्रन्थ व्याख्या होने से मूलार्थ से विरुद्ध हो तो अप्रमाण और अनुकूल हो तो प्रमाण हो कर माननीय होने के कारण परतः प्रमाण हैं। क्योंकि ब्राह्मणग्रन्थों में सर्वत्र संहिताओं के मन्त्रों की प्रतीक धर धर के पद वाक्य और प्रकरणानुसार व्याख्या की है इस लिये मन्त्रभाग मूल व्याख्येय और ब्राह्मण ग्रन्थ व्याख्या है ॥

रा० आप लिखते हैं तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षाकल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते। इस का अर्थ सीधा २ यह मान लेवैं कि आप के चारों वेद और उन के छओं अङ्ग अपरा हैं जो परा उस से अक्षर में अधिगमन होता है अपना फिरावट का वा अर्थाभास छोड़ दें किमधिकमित्यलम्।

स्वा० यहां तक आप का जो ऊटपटांग लेख है उस को कौन शुद्ध कर सकता है

* विद्यावृद्धों ही को अन्यथा कहने और लिखने में शर्म वा भ्रम होता है अविद्यायुक्त बालकों को नहीं।

क्योंकि इसी भूमिका के पृष्ठ ४२ पङ्क्ति ३ में। सर्ववेदायत्पदमामनन्ति। इस उपनिषद् के वचन में आप के सीधे २ अर्थ को टेढ़ा २ कर दिया देखो यमराज कहते हैं कि हे नचिकेता जिस का अभ्यास सब वेद करते हैं उस ब्रह्म का उपदेश मैं तुझ से करता हूं तू सुन कर धारण कर जब ऐसा है तो वेदों अर्थात् मन्त्रभाग में परा विद्या क्यों नहीं। देखो तमीशानं इत्यादि मन्त्र ऋग्वेद। परीत्य भूतानि इत्यादि और ईशावास्य इत्यारभ्य ओं खं ब्रह्म पर्यन्त मन्त्रयुक्त ४० चालीसवां अध्यायस्थ मन्त्र यजुर्वेद। दधन्वेवायदीमनुवोचद्ब्रह्मेति वेरुत्तत्। इत्यादि मन्त्र सामवेद महद्यक्षं इत्यादि मन्त्र अथर्ववेद में हैं जब वेदों में हजारह मन्त्र ब्रह्म के प्रतिपादक हैं जिन में से थोड़े से मन्त्रों का अर्थ भी मैंने भूमिका पृष्ठ ४३ पङ्क्ति २६ से लेके ३० पङ्क्ति की समाप्ति तक लिख रक्खा है जिस को देखना हो देख लेवे भला इतना भी राजा जी को बोध नहीं है कि जो वेदों में परा विद्या न होती तो केन आदि उपनिषदों में कहां से आती। मूलं नास्ति कुतः शाखाः। क्या जो परमेश्वर अपने कहे वेदों में अपनी स्वरूप विद्या का प्रकाश न करता तो किसी ऋषि मुनि का सामर्थ्य ब्रह्मविद्या के कहने में कभी हो सकता था? क्योंकि कारण के विना कार्य होना सर्वथा असंम्भव है जो केन आदि नव उपनिषदों को पराविद्या में मानें गे तो उन से भिन्न आयुर्वेद धनुर्वेद गान्धर्ववेद अर्थवेद और मीमांसादि छः शास्त्र आदि परा विद्या में क्यों नहीं जब न इस वचन में उपनिषद् और न किसी अन्य ग्रन्थ का नाम लिखा है तो कोई उन का ग्रहण कैसे कर सकता है भला कोई राजा जी से पूछे गा कि आप ने (यया तदक्षरमधिगम्यते सा पराविद्यास्ति) इस वाक्य से कौन से ग्रन्थों का नाम निश्चित किया है क्या (यया) इस पद से कोई विशेष ग्रन्थ भी आ सकता है और जो मैं ने वेदों में परा और अपरा विद्या लिखी है उस को कोई विपरीत भी कर सकता है कभी नहीं इस लिये सब मनुष्यों को योग्य है कि जैसे राजाजी संस्कृत विद्या के वेदादि ग्रन्थों को न पढ़ कर उन्हों में प्रश्नोत्तर किया चाहते और जैसी स्वामी विशुद्धानन्द जी ने विना सोचे समझे सम्मति कर दी है वैसे साहस न करना चाहिये किन्तु उस २विद्या में योग्य हो के किसी से विचारार्थ प्रवृत्त होना चाहिये ॥

प्रश्न– आप ने अपने दूसरे पत्र में राजा जी को लिख कर प्रश्न करने और उत्तर समझने में अयोग्य जानकर लिख के उत्तर देना चाहा न था फिर अब क्यों लिख के उत्तर देते हो? ॥

उत्तर— जो राजा जी स्वामी विशुद्धानन्द जी की सम्मति न लिखाते तो मैं इस पत्र के उत्तर में एक अक्षर भी न लिखता क्योंकि उन को तो जैसा अपने पत्र में लिख चुका हूं वैसा ही निश्चित जानता हूं ॥

प्रश्न— इस संवाद में आप प्रतिपक्षी राजा जी को समझते हो वा स्वामी विशुद्धानन्द जी को ? ॥

उ० स्वामी विशुद्धानन्द जी को क्योंकि राजा जी तो विचारे संस्कृत विद्या पढ़े ही नहीं उन के सामने मेरा लेख ऐसा होवे कि जैसा बधिर के सामने अत्यन्त निपुण गाने वाले का वीणा आदि बजाना और षड्जादि स्वरों का यथायोग्य आलाप करना होता है ॥

प्र० जो तुम पक्षी राजा जी को छोड़ कर स्वामी विशुद्धानन्द जी को आगे धरते हो सो यह न्याय की बात नहीं है ? ॥

उ० यह मुझ वा किसी को योग्य नहीं है कि संस्कृत में कुछ योग्य विद्वान् को छोड कर अयोग्य के साथ संवाद चलावे न राजा जी को योग्य है कि अपने साक्षी को छोडें और स्वामीविशुद्धानन्द जी को भी योग्य है कि अपने शरणागत आये राजा जी की रक्षा से विमुख न हो बैठें *॥

प्र० स्वामीविशुद्धानन्द जी वा बालशास्त्री जी आदि काशी के सब विद्वान् और बुद्धिमान् मिलकर राजा जी का पक्ष लेकर आप से शास्त्रार्थ वा लेख करें गे तो आप को बड़ा कठिन पड़ैगा ? ॥

उ० मैं परमेश्वर की साक्षी से सत्य कहता हूं कि जो ऐसा वे करें तो मैं अत्यन्त प्रसन्नता के साथ सब को विदित करता हूं कि यह बात कल होती हो तो आज ही होवे जो ऐसी इच्छा मेरी न होती तो मैं काशी में विज्ञापनपत्र क्यों लगवाता और स्वामी विशुद्धानन्द जी तथा बालशास्त्री जी को प्रतिपक्षी स्वीकार क्यों करता ॥

प्र० वे हैं बहुत और आप अकेले हो कैसे संवाद कर सको गे ? ॥

उ० इस के होने में कुछ असम्भव नहीं क्यों कि जब सब काशी और अन्यत्र के विद्वान् और बुद्धिमान् लोग अपना अभिप्राय पत्रस्थ कर वा सन्मुख जा के स्वामी विशुद्धानन्द जी वा बालशास्त्री जी को विदित कराते जायंगे और वे उन लेख वा वचनों को देख सुन उन में से इष्ट को ले मुझ से सन्मुख वा पत्रद्वारा इन दो बातों में से जि-

* यह धार्मिक विद्वानों का काम नहीं है कि जिस को शरणागत लेवे उसे छोड़कर विश्वास घात कर बैठें ॥

SGDF
Sri Gargeshwari Digital Foundation

स में उन की प्रसन्नता हो ग्रहण करके शास्त्रार्थ करें उसी बात में भी उन से शास्त्रार्थ करने में उद्यत हूं परन्तु जैसे मैं इस पुस्तक पर अपना हस्ताक्षर प्रसिद्ध करता हूं वैसे वे भी करें तो ठीक है अन्यथा नहीं ॥

प्र० सन्मुख हो कर शास्त्रार्थ करने में अच्छा होगा वा पत्र द्वारा ? ॥

उ० सर्वोत्तम तो यह है जो मैं और वे सन्मुख होकर शास्त्रार्थ करें तो शीघ्र सत्य वा झूंठ का सिद्धान्त हो सकता है अर्थात् १ महीने से लेके छः महीने तक सब बातों का निर्णय हो सकता है और दूर २ रहकर पत्रद्वारा शास्त्रार्थ करने में ३६ छत्तीस वर्षों में भी पूरा होना कठिन है परन्तु जिस पक्ष में वे प्रसन्न हो उसी में मैं भी प्रसन्न हूं॥

प्र० इस शास्त्रार्थ के होने और न होने का क्याफल होगा ॥

उ० जो अविरोध होने से एक मत होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से सब को परमानन्द होना और न होने पर जो परस्पर विरुद्ध मिथ्या मत में वर्त्तमान मनुष्यों के अधर्म अनर्थ कुकाम और बन्ध के न छूटने से उन के दुःखों का न छूटना फल है ॥

प्र० शास्त्रार्थ हुए पर भी हठ से आप वा वे विरुद्ध मत न छोड़ें तो छुड़ाने का क्या उपाय है ? ।

उ० शास्त्रार्थ से पूर्व में और वे जिस का पक्ष झूंठा हो उस के छोड़ने और जिस का सत्य हो उस के स्वीकार करने के लिये प्रतिज्ञा का पक्के कागज पर लेख हो कर रजिष्टरी कराकर एक दूसरे को अपने २ पत्र को देने से सम्भव है कि आप अपना २ हठ छोड़ देवें क्योंकि जो न छोड़ै गा तो राजा अपनी व्यवस्था से हठ को छुड़ा सकता है ।

प्र० जब आप काशी में सब दिन निवास नहीं करते और स्वामी विशुद्धानन्द जी तथा बालशास्त्री जी वहीं बसते हैं तो सन्मुख में शास्त्रार्थ कैसे हो सकता है ? ।

उ० मैं यह प्रतिज्ञा करता हूं कि जब वे सन्मुख हो कर शास्त्रार्थ करना स्वीकार करें गे और इस को सत्य समझ लूंगा तब जहां हूंगा वहांसे चलके काशी में उचित समय पर पहुंचूं गा कि जिस में उन को परदेशयात्रा का क्लेश और धनव्यय भी न करना पड़ेगा पुनः वहां यथावत् शास्त्रार्थ हो कर सत्यासत्य निर्णय के पश्चात् सब का उपकार भी सिद्ध होगा क्या यह छोटा लाभ है ।

प्र० जब आप उन से शास्त्रार्थ करके अपना मत सिद्ध किया चाहते और वे नहीं किया चाहते हैं इस का क्या कारण है ? ।

SGDF Sri Gargeshwari Digital Foundation

उ० विदित होता है कि वे अपने मन में जानते हैं कि शास्त्रार्थ करने से हम अपने मत को सिद्ध न कर सकेंगे वा सं० १९२६ के शास्त्रार्थ को देख घबराहट होगी कि दूर ही दूर से ढोल बजाना अच्छा है जो उन को यह निश्चय होता कि हमारा वेदानुसार और स्वामी जी का मत वेदविरुद्ध है तो शास्त्रार्थ किये विना कभी नहीं रहते अथवा जो और कुछ कारण हो तो शास्त्रार्थ करने में क्यों विलम्ब करते हैं आज से पीछे जो कोई पुराण वा तन्त्र आदि मत वाले मुझसे विरुद्धपक्ष को ले कर शास्त्रार्थ किया चाहें वा लिख के प्रश्नोत्तर की इच्छा करें वे स्वामी विशुद्धानन्द जी के और वालशास्त्री जी के द्वारा ही करें इस से अन्यथा जो करें गे तो मैं उन का मान्य कभी न करूंगा, हां सन्मुख आ के तो वे स्वयं भी पूछ सकते हैं इस से स्वामी विशुद्धानन्द जी और वालशास्त्री जी ऐसा न समझें कि हम वेदों में विद्वान् वा सर्वोत्तम-पण्डित हैं और कोई अन्य मनुष्य भी ऐसा निश्चय न कर लेवे कि इन से अधिक पण्डित आर्य्यावर्त्तमें दूसरा कोई भी नहीं है हां ऐसा निश्चय करना ठीकहै कि काशी में इस समय आधुनिकग्रन्थाभ्यास कर्त्ता संन्यासियों में स्वामी विशुद्धानन्द जी और गृहस्थों में वालशास्त्री जी कुछ विशिष्ट विद्वान् हैं मैं ने तो संवाद में केवल अनवस्था दोष परिहार्थ इन दोनों को सन्मुख आर्य्यावर्त्तीय पण्डितों में माने हैं अनुमान है कि उन को अन्य भी मनुष्य ऐसे मानते होंगें इस से अन्य प्रयोजन भी कुछ नहीं सर्वशक्तिमान् सर्वान्तर्यामी परमेश्वर कृपा करके स्वामी विशुद्धानन्दजी और वालशास्त्रीजी को निर्भय निःशङ्क करै कि जिस से वे मुझ से सन्मुख वा पत्रद्वारा पाषाणादिमूर्ति पूजादिमंडन विषयों में शास्त्रार्थ करने में दृढोत्साहित हों जैसे कि मैं उन के खण्डन में दृढोत्साहित हूं ॥

मुनिरामाङ्कचन्द्रेब्दे शुक्ले मासेऽसिते दले।
द्वितीयायाङ्गुरौवारे भ्रमोच्छेदोह्यलङ्कृतः ॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यश्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीनिर्मित आर्यभाषाविभूषितो भ्रमोच्छेदनोऽयं ग्रन्थः पूर्त्तिमगमत् ॥

SGDF

SGDF
Sri Gangeshwari Digital Foundation

SGDF
Sri Gangeshwari Digital Foundation

वैदिक यन्त्रालय अजमेर के पुस्तकों का सूचीपत्र और संक्षिप्त नियम।

(१) मूल्य रोक भेजकर मंगावें, (२) रोक भेजने वालों को १०) रु० वा इस से अधिक पर २५) रु० सैकड़ा के हिसाब से कमीशन के पुस्तक अधिक भेजे जायंगे (३) डाक महसूल वेदभाष्य छोड़कर सब पुस्तकों पर अलग लिया जायगा २) रु० वा इस से अधिक के पुस्तक रजिस्टरी कराकर भेजे जायंगे, (४) मूल्य निचेलिखे पते से भेजें ॥

ऋग्वेदभाष्य अष्टक १–२४७ ८२।≠)
यजुर्वेद भाष्य सम्पूर्ण २४)

	मू०	डा०
ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका	२॥)	≠)
,, जिल्द की	३)	।)
वर्णोच्चारणशिक्षा	≠)	)॥
सन्धिविषय	।≠)	)॥
नामिक	।≠)	)॥
कारकीय	।)	)॥
सामासिक	।≠)	)॥
स्त्रैणतद्धित	१)	≠)
अव्ययार्थ	≠)॥	)॥
सौवर	≠)॥	)॥
आख्यातिक	१।≠)	≠)॥
पारिभाषिक	≠)॥	)॥
धातुपाठ	।≠)	)॥
गणपाठ	।≠)	)॥
उणादिकोष	॥)	≠)
निघण्टु	।≠)	≠)॥
निरुक्त	१)	≠)॥
अष्टाध्यायीमूल	।≠)	)॥
संस्कृतवाक्यप्रबोध	≠)	)॥
हवनमंत्र	)॥	)॥
व्यवहारभानु	≠)	)॥
भ्रमोच्छेदन	)॥	)॥
अनुभ्रमोच्छेदन	)॥	)॥

	मू०	डा०
मेला चांदापुर नागरी	≠)	)॥
,, उर्दू	≠)॥	)॥
वेदविरुद्धमतखण्डन	≠)	)॥
आर्योद्देश्यरत्न माला	≠)	)॥
गोकरुणानिधि	≠)	)॥
स्वामीनारायणमतखण्डन		
,, गुजराती	)॥	)॥
स्वमन्तव्याऽमन्तव्यप्रकाश	)॥	)॥
,, इंग्रेजी	)॥	)॥
शास्त्रार्थ फीरोज़ाबाद	≠)	)॥
शास्त्रार्थकाशी	≠)	)॥
आर्य्याभिविनय	।)	)॥
,, जिल्द की	।=)	≠)
वेदान्तिध्वान्त निवारण	≠)	)॥
भ्रान्तिनिवारण	≠)।	)॥
पञ्चमहायज्ञविधि	≠)॥	)॥
,, जिल्द की	।≠)॥	≠)
आर्य्यसमाज केनियमोपनि०	)।	)॥
शतपथ ब्राह्मण (१काण्ड)	॥)	≠)
सत्यार्थ प्रकाश	२)	।)
,, जिल्द का (कुछ समय के लिये)	२।)	।≠)
सत्यार्थ प्रकाश (बढ़िया)	२॥)	।≠)
संस्कार विधि	१।)	≠)
,, जिल्द का	१॥≠)	≠)
स्वीकार पत्र	)।	)॥

आ० स० के नियम नागरी में सफेद कागज पर ।) सैकड़ा रंगीन पर ।≠) तथा अङ्ग्रेजी सफेद पर॥)

मैनेजर वैदिक यन्त्रालय अजमेर

SGDF
Sri Gargeshwari Digital Foundation